महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बिहार

मानविकी एवं भाषासंकाय

संस्कृत विभाग

एम. ए. द्वितीय सत्र

विषय - ध्वन्यालोक (प्रथम उद्योत)

Code – SNKT2003

उपविषय - ध्वन्यालोक प्रथम उद्योत का प्रतिपाद्य विषय

(5-13 कारिका पर्यन्त)

विश्वजित् वर्मन
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय

विषयक्रम

इस पाठ में पञ्चमी कारिका से त्रयोदशी कारिका पर्यन्त आलोचित हैं। इसमें आलोच्य विषय निम्नरूप हैं-

1. रस का काव्यात्मत्व प्रतिपादन
2. कविप्रतिभा का कारण प्रतीयमान अर्थ
3. वाच्य से व्यङ्ग्य की प्रतीतिजनक सामग्री का भेद
4. काव्य में व्यङ्ग्यार्थ की प्राधान्यता में युक्ति
5. प्रतीयमान अर्थ का ज्ञान में वाच्यार्थ
6. वाच्य ज्ञान पूर्वक प्रतीयमान अर्थ
7. वाच्यार्थ से व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति होने पर भी व्यङ्ग्य अर्थ की प्राधान्यता
8. ध्वनि काव्य का लक्षण
9. ध्वनि के प्रमुख दो भेद

1. रस का काव्यात्मत्व प्रतिपादन

वाच्यार्थ और व्यङ्ग्यार्थ में व्यङ्ग्यार्थ ही सहृदयजनों के द्वारा प्रसंशित है। और ये व्यङ्ग्यार्थ वस्तु, अलङ्कार तथा रस रूप में विभक्त होकर कोई विलक्षण आह्लादजनक अर्थ को प्रकट करता है। उनमें रसादिरूप व्यङग्य ही काव्य का जीवनधायक तत्त्व है इस बात को प्रतिपादित करने के लिए आनन्दवर्धनाचार्य ने कहा है कि-

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्वियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः॥ 5

अन्वय - तथा च पुरा आदिकवेः क्रौञ्चद्वन्द्वियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः स एवार्थः काव्यस्यात्मा।

अर्थ- काव्य का आत्मा वह अर्थ है, जैसे कि पुराकाल में क्रौञ्च-पक्षी के जोड़े के वियोग से उत्पन्न शोक ही आदिकवि का श्लोक बन गया।

रस ही काव्य का आत्मा है इस बात को स्पष्ट कराने के लिए इस कारिका में आनन्दवर्धनाचार्य ने एक प्राचीन घटना का उदाहरण दिया है। एक बार उद्यान में भ्रमण करते हुए क्रौञ्च नामक एक पक्षीविशेष के जोड़े में एक का व्याध द्वारा हनन जन्य वियोग से दूसरे पक्षी के करुण क्रन्दन युक्त विलाप को सुनकर अत्यन्त करुणा से द्रवित-चित्त आदिकवि वाल्मीकि ऋषि का उत्पन्न शोक ही श्लोक रूप में परिणत हो गया। जैसे--

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

हे निषाद तुम निश्चय ही अधिक वर्षों तक इस जगत् में स्थिति को प्राप्त न कर पाओगे (तुम शीघ्र ही मर जाओ) क्योंकि तुमने क्रौञ्चनामक पक्षी विशेष के जोड़े में से एक को मार डाला जो कि अत्यन्त कामातुर और निरपराध था।

शोक ही करुण रस का स्थायी-भाव है। यहाँ वाल्मीकि के हृदयस्थित करुण रस (शोक) ही श्लोक के रूप में निर्गत हुआ। यद्यपि वस्तु तथा अलंकार रूप से व्यङ्ग्य का और भी भेद है किन्तु चमत्कार का प्रतिपादन रस, भाव आदि के द्वारा होता है। इसलिए रस ही काव्य का आत्मा है।

2. कविप्रतिभा के कारण प्रतीयमान अर्थ

इस प्रतीयमान अर्थ को प्रकाशित करने के लिए कविप्रतिभा अत्यन्त जरूरी है। सरस्वती महाकवियों के प्रतिभा को प्रकाशित करती है, जिसे वे रसान्वित काव्यों की रचना कर सके। इसलिए कहते हैं-

सरस्वती स्वादु तदर्थवस्तु निःष्यन्दमाना महतां कवीनाम्।
अलोकसामान्यमभिव्यनक्ति परिस्फुरन्तं प्रतिभाविशेषम्॥ 6

अन्वय- स्वादु तत् अर्थवस्तु निःष्यन्दमाना महतां कवीनां सरस्वती अलोकसामान्यं परिस्फुरन्तं प्रतिभाविशेषम् अभिव्यनक्ति।

अर्थ- उस रस-भाव-रूप अर्थ को प्रकाशित करती हुई महाकवियों की सरस्वती (वाणी) अलौकिक परिस्फुरित होते हुए प्रतिभा विशेष को अभिव्यक्त करती है।

इसी प्रतिभा विशेष के कारण अपनी विद्वत्ता के द्वारा विश्व को चकित करने वाले कविसंसार में कालिदास आदि दो-तीन महाकवि ही गिने जाते हैं।

3.वाच्य से व्यङ्ग्य की प्रतीतिजनक सामग्री का भेद

वाच्य-वाचक के लक्षण मात्र को जानने वाला अथवा काव्यतत्त्व की भावना से पराङ्मुख व्यक्ति उस अर्थ को नहीं जान सकते है उसे काव्य के तत्त्वज्ञ लोग ही जान सकते हैं। इसलिए कहते हैं—

शब्दार्थशासनज्ञानमात्रेणैव न वेद्यते।
वेद्यते स तु काव्यार्थतत्त्वज्ञैरेव केवलम्॥ 7

अन्वय- स तु शब्दार्थशासनज्ञानमात्रेण एव न वेद्यते, केवलं काव्यार्थतत्त्वज्ञैरेव वेद्यते।

अर्थ- शब्दार्थ-व्युत्पादक व्याकरण-कोश-शास्त्रादि के ज्ञान मात्र से उस व्यङ्ग्य अर्थ को नहीं जान सकते हैं। उसे (व्यङ्ग्यार्थ) केवल काव्यार्थ की रहस्यवेत्ता ही जान सकता है।

क्योंकि वाच्य अर्थ सामान्य है किन्तु व्यङ्ग्यार्थ एक विशेष अर्थ है।

4. वाच्यार्थ से व्यङ्ग्यार्थ का भेद प्रतिपादन करके काव्य में व्यङ्ग्यार्थ की प्राधान्यता में युक्ति प्रदर्शन करते हुए कहा है कि—

सोऽर्थस्तद्व्यक्तिसामर्थ्ययोगी शब्दश्च कश्चन।
यत्नतः प्रत्यभिज्ञेयौ तौ शब्दार्थौ महाकवेः॥ 8

अन्वय- स अर्थः तद्व्यक्तिसामर्थ्ययोगी कश्चन शब्द च। तौ शब्दार्थौ महाकवेः यत्नतः प्रत्यभिज्ञेयौ।

अर्थ- वह अर्थ और उस अर्थ को अभिव्यक्त करने वाला कोई शब्द है। उन दोनों शब्द और अर्थ, महाकवि को जानने चाहिए।

महाकवियों को व्यङ्ग्यार्थ और व्यञ्जक शब्द का ज्ञान होना चाहिये क्योंकि व्यङ्ग्य-व्यञ्जक भाव से प्रयोग करने पर ही महाकवित्व प्राप्त होता है। न केवल वाच्य-वाचक मात्र का प्रयोग करने से।

5. प्रतीयमान अर्थ का ज्ञान में वाच्यार्थ

काव्य में व्यङ्ग्य-व्यञ्जक का प्रधान्य ही है किन्तु उस व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति वाच्यर्थ से ही होता है। इसलिए कहते हैं—

आलोकार्थी यथा दीपशिखायां यत्नवाञ्जनः।
तदुपायतया तद्वदर्थे वाच्ये तदादृतः॥ 9

अन्वय- यथा आलोकार्थी जनः दीपशिखायां (यत्नवान्) तद्वत् तदुपायतया तदादृतः जनः वाच्ये अर्थे यत्नवान्।

अर्थ- जिस प्रकार आलोक चाहनेवाला व्यक्ति दीपशिखा के लिए यत्न करता है क्योंकि उसके बिना प्रकाश नहीं हो सकता। उसी प्रकार उस रमणीय (प्रतीयमान) अर्थ को चाहनेवाले व्यक्ति को भी पहले वाच्य अर्थ को ग्रहण करना आवश्यक है।

अर्थात् वाच्यार्थ का ज्ञान होने के बाद ही व्यङ्ग्य अर्थ का बोध होता है।

6. वाच्य ज्ञान पूर्वक प्रतीयमान अर्थ

केवल महाकवियों को ही नहीं अपितु सहृदय पाठकों को भी व्यङ्ग्य अर्थ में यत्न करना चाहिए किन्तु उसके लिए पहले वाच्यार्थ का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है—

यथा पदार्थद्वारेण वाक्यार्थः सम्प्रतीयते।
वाच्यार्थपूर्विका तद्वत्प्रतिपत्तस्य वस्तुनः॥ 10

अन्वय- यथा वाक्यार्थः पदार्थद्वारेण सम्प्रतीयते, तद्वत् तस्य वस्तुनः प्रतिपत् वाच्यार्थपूर्विका।

अर्थ- जिस प्रकार पदार्थ के द्वारा वाक्यार्थ का ज्ञान होता है उसी प्रकार वाच्यार्थ के ज्ञान के बाद ही व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति होती है।

7. वाच्यार्थ से व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति होने पर भी व्यङ्ग्य अर्थ की प्राधान्यता

यद्यपि वाच्यार्थ से व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति होती है किन्तु उसमें व्यङ्ग्यार्थ की ही प्राधान्यता होती है। इसलिए कहते हैं—

स्वसामर्थ्यवशेनैव वाक्यार्थं प्रतिपादयन्।
यथा व्यापारनिष्पत्तौ पदार्थो न विभाव्यते॥ 11
तद्वत्सचेतसां सोऽर्थो वाच्यार्थविमुखात्मनाम्।
बुद्धौ तत्त्वार्थदर्शिन्यां झटित्येवावभासते॥ 12

अन्वय- स्वसामर्थ्यवशेन एव वाक्यार्थ प्रथयन् अपि पदार्थः व्यापारनिष्पत्तौ यथा न विभाव्यते। तद्वत् सः अर्थ वाच्यार्थविमुखात्मनां सचेतसां तत्त्वार्थदर्शिन्यां बुद्धौ झटिति एव अवभासते।

अर्थ- जिस प्रकार पदार्थ (पद-समूह) अपनी सामर्थ्य (आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्य ज्ञान) से वाच्यार्थ को प्रकाशित करने के लिए अपना समर्पन करके व्यापार निष्पत्ति की स्थिति में विभक्तरूप से भासित (प्रतीत) होता है।

उसी प्रकार चमत्कारहीन नीरस वाच्यार्थ से विमुख सहृदयों के तत्त्वार्थ-दर्शिनी बुद्धि में वहीं अलौकिक चमत्कारजनक व्यङ्ग्यार्थ झट से ही अवभासित हो जाता है।

वाच्यार्थ केवल उपकारक होकर अपने को अर्पण करके गौण हो जाता है। चमत्कार केवल व्यङ्ग्यार्थ में होता है वाच्यार्थ में नहीं। इसलिए सहृदयश्लाघ्य होने के कारण काव्य में व्यङ्गार्थ ही प्रधान है।

8. ध्वनि काव्य का लक्षण

इस प्रकार से वाच्यार्थ से व्यङ्ग्यार्थ की भिन्नता तथा उत्तमता को बतलाने के बाद ध्वनि का लक्षण बताते है—

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः॥ 13

अन्वय- यत्र उपसर्जनीकृतस्वार्थौ अर्थः शब्दः वा तम् अर्थं व्यङ्क्त सः काव्यविशेषः सूरिभिः ध्वनिः इति कथितः।

अर्थात् जिस काव्य में वाच्यार्थ अपने आपको अथवा वाचक शब्द अपने स्वरूप या अर्थ को दूसरे के प्रति समर्पण द्वारा अप्रधान बनाकर (गूणीभूत कर) उस विलक्षण अत्यन्त रमणीय व्यङ्ग्यार्थ (प्रतीयमान अर्थ) को व्यञ्जनाव्यापार द्वारा व्यक्त (अभिव्यक्त) करता है उस काव्यविशेष को विद्वानों ने ध्वनि नामक उत्तम काव्य कहा है।

9. ध्वनि के प्रमुख दो भेद

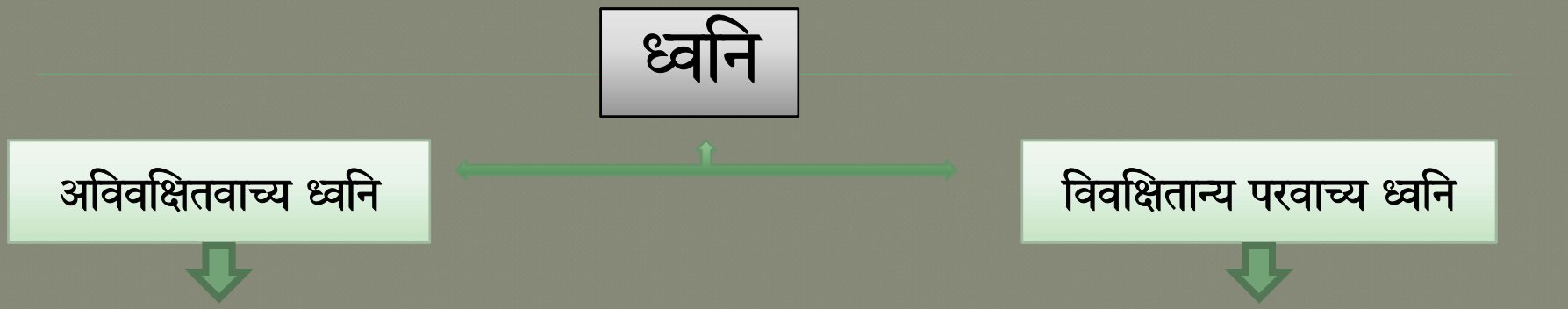

सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः ।
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम् ॥

तीन प्रकार के लोग सुवर्णपुष्पा पृथिवी का चयन करते हैं शूर, विद्वान् और जो सेवा करना जानता है।

शिखरिणि क्व नु नाम कियच्चिरं मभिधानमसावकरोत्तपः ।
तरुणि येन तवाधरपाटलं दशति बिम्बफलं शुकशावकः ॥

हे तरुणि इस शुक के बच्चे ने किस पर्वत पर कितने दिनों तक कौन सा तप कियो है, जो तुम्हारे अधर के समान लाल वर्ण वाले बिम्बफल को काट रहा है।

धन्यवाद